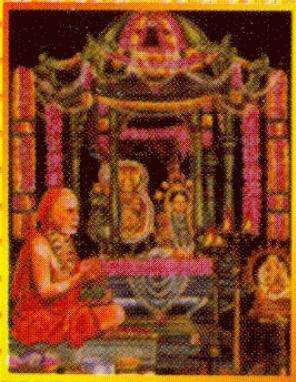


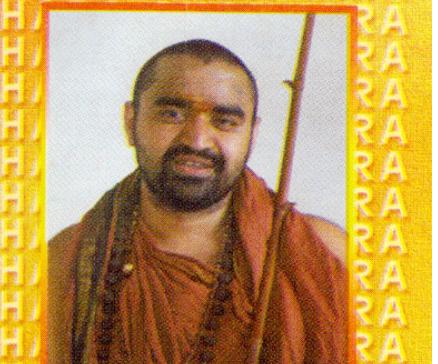
श्री शंकराचार्य रत्नामी मठ श्री कांची कामकोटि पीठम्



लेखक

हिन्दू एन. गणेशन

डॉ. (श्रीमति) सविता शुक्ला



JAYA JAYA SHANKARA HARA HARA SHANKARA

*Published
by*

Sri Kanchi Kamakoti Shankara Mutt

Mahaboobnagar Branch,
Mahaboobnagar, Andhra Pradesh.

आमुख

ईशा-कृपा बिना जीवन में कुछ भी संभव नहीं । बिना उसकी इच्छा के पत्ता भी नहीं हिलता । साधु संतों की कृपा-प्रसाद सम्बाद भी बड़े भाग्य से मिलता है ।

मेरे जीवन में भी ऐसी ही शुभ घड़ी उस दिन आई जब श्री शंकर विजयेन्द्र सरस्वती स्वामीजी ने श्री हिन्दू गणेशजी से घर पर फोन करवाया और शंकरभट स्कन्दगिरि सिकिन्दराबाद आकर मिलने का आदेश दिया । मैं सपरिवार जब वहाँ पहुँची तो अनेक व्यस्तताओं के बीच महामहिम परम पावन श्रद्धेय स्वामीजी जिस प्यार और स्नेह से मिलें जां आशीर्वाद दिया, वह सुरवानुभीति गूंगे का गुड़ है ! दूसरे दिन ब्रह्म मुहूर्त में स्वामीजी कांची के लिए प्रस्थान की तैयारी में थे, तब भी उन्होंने हमें लगभग आधे घंटे का समय दिया जबकि अनेक भक्त आतुरता से उनके दर्शन और भेटं की प्रतीक्षा में थे ।

वहाँ से बहुत सा अमूल्य साहित्य भी स्वामीजी की कृपा से मुझे मिला । जगद्गुरु श्री आदि शंकराचार्य जी और श्री कांची काम कोटी पीठम् के बारे में मेरा ज्ञान सीमित था किन्तु श्री हिन्दू गणेशनजी की पुस्तक श्री कांची कामकोटिपीठम् एक परिचय जो वास्तव में गागर में सागर है । इस पुस्तक से मेरा ज्ञान वर्द्धक हुआ ।

स्वामीजी के आदेश से श्री गणेशन जी की इसी पुस्तक का अनुवाद करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ मैं कृत कृत्य हूँ । मेरा यह प्रयास कितना सर्वग्राह्य और सर्वसुलम बन पड़ा है यह तो सुधी पाठक ही बतायेंगे ।

श्री स्वामीजी के आशीर्वाद ने इस पुस्तक में संजीवनी शक्ति फूंकी है । यह मेरा अगाध विश्वास है ।

श्री शंकराचार्य स्वामीजी
द्वय के श्री चरणों में सादर समर्पित
डॉ. श्रीमती सविता शुक्ला

काँचीपुरम - मोक्षपुरी या मोक्षधाम

जय - जय शंकर, हर - हर शंकर का मंत्रोच्चारण करते हुए सुनाई दे रहे थे जब श्री काँची कामकोटि पीठम् के दों शंकराचार्यजी हमारें देश के दूरस्थित हिस्से में प्रविष्ट हुए ।

काँची शंकर कामोटि शंकर की ध्वनि लगातार सुनाई दे रही थी जब लोग दोनों शंकराचार्य जी को चारों ओर से सादर धेरे हुए उस स्थान पर ले जा रहे थे जहाँ उनका स्वागत होने वाला था । वहाँ पर उपस्थित लोग पूछ रहे थे - यह काँची है कहाँ ?

काँची, काँचीपुरम कांसक्षिप्त रूप है । यह देश के सात मोक्षधामों में से एक है । मोक्षधाम वह स्थान है जहाँ या तो जन्म लेकर या मृत्यु के द्वारा, व्यक्ति जन्म और मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है ।

अयोध्या, मथुरा माया (हरिद्वार), काशी (वाराणसी), काँची, अवन्तिका (उज्जैन) एवं द्वारका ये सात मोक्षधाम हैं और ध्यान देने योग्य बात ये हैं कि केवल एक छोड़कर सारे धाम उत्तर में हैं । काँची में कामाक्षी की मूर्ति ही सर्व प्रमुख है और केवल यही धाम दक्षिण भारत में है ।

यह पुण्यधाम चेन्नै से लगभग ७० किलोमीटर दूर स्थित है और इसका संबंध, महान धर्म प्रचारक श्री आदि गुरु शंकराचार्य से है । श्री शंकराचार्य जी विश्व के एक महान एवं विश्व विख्यात दार्शनिक है । उन्होंने इस काम कोटि पीठम् की यहाँ पर स्थापना की, और विदेह मुक्ति प्राप्त करनें तक उन्होंने स्वयं ही इस पीठम् की अध्यक्षता की । विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय की नींव डालनें वाले श्री रामानुजाचार्य का जन्म काँची के निकट श्रीपेरुमबंदूर में हुआ और उनकी प्रारंभिक शिक्षा काँची पुरम में हुई । यहाँ पर स्वामी रामानुजाचार्य ने भगवान वरदराज की सेवा करते हुए सन्यास जीवन में प्रवेश किया ।

वैष्णव - धर्म के वड़कलै ओर तेनकलै सम्प्रदाय की नींव डालनें वाले वेदान्तदेशिकर और पिल्लै लोकाचार्य भी काँची के ही निवासी थे । ज्ञानप्रकाश नामक शैव भी काँची के ही रहनें वाले थे ।

काँची नगरी कई विख्यात कवियों, पंडितों, विद्वानों का भी गढ़ रही है । साहित्यिक गतिविधि के केन्द्र के रूप में भी यह फली फूली और यहाँ संस्थाओं

में वेदों और शास्त्रों का उच्च अध्ययन और अध्यापन भी होता था । इन संस्थाओं को घटिका कहते हैं, और इन घटिकाओं में हजारों की संख्या में छात्र थें, वे शास्त्रों की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन करते थे ।

काँची नगरी कई छोटे बड़े मन्दिरों से सुसज्जित है । शिव मन्दिरों में एक प्राचीन श्री एकाब्रनाथ का मन्दिर है । यह एक बहुत बड़ा मन्दिर है जिसमें ऊँचे ऊँचे गोपुरम् हैं और भगवान शिवजी के अतिरिक्त अन्य कई मूर्तियाँ और बड़ा तालाब भी हैं ।

कैलाशनाथ का मन्दिर अपनी भव्य मूर्ति और कलाकृतियों के लिए प्रसिद्ध है । ये सबसे प्राचीन मन्दिर है । यहाँ पर श्री सुब्रमण्य (कार्तिकेय स्वामीजी) जो कुमार कोद्वम नाम से जाने जाते हैं का भी एक विशेष मन्दिर है ।

विष्णु के मन्दिरों में श्री वरदराज स्वामी का मन्दिर प्रसिद्ध है । उलूएट मूर्तिकला और एक बड़ी संख्या में मन्दिर की दीवारों पर विभिन्न कालों के खुदें शिलालेख इस मन्दिर का एक बड़ा आकर्षण है ।

दों असुर जो छिपकली में परिवर्तित हो गए थे और स्वामी वरदराज की कृपा से उनकी इस अभिशाप से मुक्ति हुई । यह पौराणिक कथा मन्दिर के बाहर के पवित्र स्थान में छत के नीचे दों छिपकलियों की मूर्ति (जो सोने और चांदी के आवरण से ढंकी हुई हैं) के रूप में इस कथा को स्थायित्व दिया गया है ।

यह ध्यान देनें योग्य विशेष बात है कि काँची में भगवान शिव के किसी मन्दिर में देवी पार्वती की मूर्ति कहीं स्थापना नहीं की गई है । पराशक्ति का प्रमुख स्थान देवी कामाक्षी का मन्दिर है । मन्दिर के भीतर श्री काशी विश्वनाथ, अन्नपूर्णादेवी और जगदगुरु श्री आदिशंकराचार्य की मूर्तियों की स्थापना की गई है । देवी कामाक्षी श्री राजराजेश्वरी के रूप में हैं । इनके ठीक सामने श्री चक्र अंकित है । जिसे श्री आदि शंकराचार्य जी ने अपने ही पवित्र हस्तों से शालिग्राम शिला में बनाया था ।

श्री काँची कामकोटि पीठम् के आचार्य ही मन्दिर के ट्रस्टी होते हैं । हाल ही में देवी मन्दिर और आदि शंकराचार्य जी के मन्दिर के ऊपर का भाग जिसको विमान कहते हैं सोने से मढ़ा गया है । एकस्वर्ण रथ भी बनाया गया है जिसमें त्योहार के दिनों में देवीजी का जुलूस निकाला जाता है ।

काँची को पृथ्वी क्षेत्र के रूप में भी माना जाता है । प्राचीन कथा के

अनुसार, देवी कामाक्षी ने पार्थिवलिंग पूजा का ब्रत किया था अर्थात् रेत के बनें हुए लिंग के रूप में उन्होंने ईश्वर की पूजा की थी। इसलिए आज भी काँचीपुरम के ५१ शक्ति पीठ में एक प्रमुख है और श्री शिव मन्दिर में, शिव लिंग मिट्टी का ही है जिसे धातु के आवरण से ढाँक दिया गया है। मन्दिर में एक आम का पेड़ है जिसके नीचे कामाक्षी देवी ने कठिन तपस्या की थी।

काँची भारत देश का यह नामि स्थान क्यों कि काँची का तात्पर्य कमरबंद है। जो प्रायः सोने या चाँदी का बना होता है जिसें स्त्रियाँ आभूषण के रूप में कमर में पहनती हैं।

काँची एक और कारण से भी प्रसिद्ध है वह है उसकी सूती और रेशमी कपड़ों की बुनाई विशेष रूप से यहाँ की साड़ियों का अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भी स्थान है। प्राचीन काल में भी सूती कपड़ा यहाँ से चीन और अन्य पश्चिमी देशों को निर्यात किया जाता था।

श्री काँची काम कोटि पीठम् का अथक प्रयास है कि वह सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक क्षेत्र में अपने प्राचीन दिव्य वैभव एवं कीर्ति को सुरक्षित एवं अक्षुण्ण रखें।

श्री काँची कामकोटि पीठम्

श्री आदि शंकराचार्य जी जो इस सर्वोच्च, अनन्त, ईश्वरीय शक्ति के मनुष्य रूप में अवतार लिये थे। आपने बात्यकाल में ही दुनिया का परित्याग कर दिया और सारें देश में ईश्वरीय, आध्यात्मिक दिव्य संदेश फैलाया। आपने ही श्री चन्द्रमौलेश्वर और देवीमहा त्रिपुरासुन्दरी की पूजा के लिए काँची कामकोटि पीठम् की स्थापना की। काँची में ही श्री आदि शंकराचार्य जी सर्वज्ञा पीठम् पर बैठे और विदेह मुक्ति प्राप्त की।

श्री काँची कामकोटि पीठम् को ही यह अद्वितीय श्रेय मिला है कि उसने ७० आचार्यों की न टूटनें वाली कड़ी तैयार की जो हमें कही और नहीं मिलती। इस पीठम् के आचार्य अद्वैत का सन्देश सारे भारत में फैला रहे हैं। और जनता के दुःख दर्द को समझाकर, उसे सुलझाने का प्रयास कर रहे हैं।

आज हमे केवल वैदिक हिन्दू सनातन धर्म में ही गुरु शिष्य परम्परा देखनें को मिलती है। किसी और धर्म में यह संबंध नहीं है। गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊर्चा है। “मातृदेवोंभव, पितृदेवोंभव, आचार्यदेवोंभव” कहकर गुरु के प्रति श्रद्धा और भक्ति को ईश्वर भवित्व से भी महान माना है।

गुरु मनुष्य के चोलें में भगवान का रूप है जो अपने शिष्यों का सही मार्गदर्शन कर उन्हें मुक्ति के मार्ग की ओर लें जाता है। सच्चा गुरु जो पथ-प्रदर्शन करता है। वह स्वयं पहले उस मार्ग पर चलता है। उसमें इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह अपने पवित्र वेदों और शास्त्रों का अर्थ अपनें शिष्यों को समझा सकें तथा वें शिष्य उस ज्ञान का अपने जीवन में आचरण कर सके।

जो व्यक्ति बिना किसी झिझक के गुरु के आगे आत्म समर्पण करता है। गुरु उसकी दुःखों से रक्षा करता है कबीर ने अपने एक दोहे में कहा है।

“हरि रुठे गुरु ठौर है, गुरु रुठें नहीं ठौर ॥”

अर्थात् यदि ईश्वर रुष्ट हो जाय तो व्यक्ति गुरु की शरण में जा सकता है। किन्तु यदि गुरु रुठ जाय तो व्यक्ति को कौन सहारा दें सकता है, कौन उसकी रक्षा कर सकता है। काँची कामकोटि पीठम् के आचार्यों के कई अनुयायी हुए। सुशिक्षित, सुयोग्य एवं जनता का सही मार्ग दर्शन करनें कीयोग्यता रखने वालें ये आचार्य, संसार के सच्चे नेता हैं, जगदगुरु हैं।

इस शताब्दी के लोग स्वयं को परम् भाग्यशाली मानते हैं जिनका जन्म उस समय हुआ जब श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी श्री काँची कामकोटि

पीठम् के अड़सठवे (६८ वें) अध्यक्ष एवं आचार्य थे जिन्हें धरती पर चलता फिरता भगवान माने जाते थे। वेदों एवं शास्त्रों की सर्वांगीण उन्नति में उन्होने जो रुचि दिखलाई उसके लिए भी वे सदा याद किए जायेगें। साथ ही स्वामीजी ने कई ट्रस्ट भी बनवाए जिन पर मन्दिरों की देखरेख का भार था और जो पुजारियों का भी ध्यान रखते थे।

उनहतरवे गुरु श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामीजी जिन्होनें इस पवित्र संगठन में दीक्षाली और श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी नें उन्हें उत्तराधिकारी के रूप में सन् १९५४ में (जय नाम के वर्ष में) नामांकित किया इसी वर्ष उन्होने भारत के कोने-कोने और नेपाल का भी दौरा किया। हाल ही में स्वामीजी ने मानसरोवर की यात्रा भी की। उन्होनें त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश और भारत के उत्तर पूर्वी प्रान्तों का भी दौरा किया। जनता को दर्शन दिया और अद्वैत दर्शन का प्रचार किया।

सन् १९८३ में श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामीजी नें अपना उत्तराधिकारी चुना और उनको शंकर विजयेन्द्र सरस्वती स्वामी नाम दिया। ये सत्तरवें आचार्य अपनें गुरु और परमगुरु द्वारा स्थापित कई ट्रस्टों की देखमाल कर रहे हैं। भारत के प्राचीन वैभव एवं कीर्ति जिसके लिए भारत शताव्दियों से माना जाता है की रक्षा काभार जिन संस्थाओं को सौपा गया उन में श्री काँची कामकोटि पीठम् अग्र गण्य है और यह संस्था स्वयं भारत के प्राचीन गौरव को बनाये हुए है।

अभी तक अनेक वेद पाठशालाओं की स्थापना की गई है जहाँ पर गुरुकुल की पद्धति से छात्रों को पवित्रवेदों की शिक्षा दी जाती है। कई ट्रस्टों की स्थापना की गई है जहाँ वेदों के अध्ययन अध्यापन को प्रोत्साहन दिया जाता है। यहाँ पर अर्थव वेद जैसी वेदों की बहुमूल्य शाखा जो लगभग लुप्त होती जा रही थी उसे पुर्णजीवित किया गया। इस मठ में एल के जी से लेकर डाक्टरेट स्तर तक की वेदों की पढ़ाई होती है और नियमित रूप से परीक्षाएँ भी होती हैं। प्रशंसा योग्य (मेरिट) विद्यार्थियों को उचित पारितोषिक भी देए जाते हैं।

जहाँ एक भी मन्दिर नहीं है वहाँ नए मन्दिरों का निर्माण तो किया जा रहा है और कुछ टूटे फूटे मन्दिरों के काम की ओर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी के प्रवास के दौरान सन् १९८० में चिदम्बरम बने मन्दिर के नमूने पर एक मन्दिर का सतारा (महाराष्ट्र) में निर्माण किया गया। इस आधार पर इस मन्दिर को उत्तर चिदम्बरम् कहा जाता है।

जिन की मन्दिरों का निर्माण हुआ उनमें से एक है एक्यावन शक्ति पीठ अम्बाजी का मन्दिर जो गुजरात में है और जहाँ सभी ५१ शक्ति पीठों को प्रदर्शित किया गया है। दक्षिण और पूर्व के बीच की खाई को पाटने के लिए, गोहाटी (आसाम) में पूर्व तिरुपति बालाजी मन्दिर का निर्माण किया गया। भगवान वेंकटेश्वर की फुट ऊँची प्रतिमा है बहु आन्ध्र प्रदेश में भगवान तिरुमला तिरुपति की मूर्ति का प्रतिरूप है। यहाँ पर भक्त न केवल भारत के कोनें कोने से अपितु विदेशों से भी आते हैं।

श्री आदि शंकराचार्य के जन्म स्थान कालडी में एक कीर्ति स्तंभ बनाया गया है। देवी कामाक्षी के मन्दिर में उत्कृष्ट भव्य मूर्तिकला इतिहास और कई पौराणिक का सुन्दर प्रदर्शन है। भगवान बालाजी तथा इलाहाबाद का सहस्र लिंग जो गंगा, यमुना तथा सरस्वती नदियों के त्रिवेणी संगम पद है, अनूठा बन पड़ा है।

इस पीठ के अन्तर्गत जहाँ एक ओर धार्मिक गतिविधियाँ चलती रहती हैं, वही दूसरी ओर उसका सामाजिक पक्ष भी उपेक्षित नहीं है। पीठ के आचार्यों के आशीर्वाद से कई ट्रस्ट, दान-पुण्य हेतु (चेरिटेबल ट्रस्ट) स्थापित किए गए हैं। जिनकी आर्थिक सहायता से कई निर्धन परिवारों की लड़कियों के विवाह कराए जाते हैं। वृद्धाश्रम भी चल रहे हैं।

श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी के नाम से ग्रामीण क्षेत्रों की उन्नती के लिये भी एक ट्रस्ट बनाया गया और इसी तरह की अन्य संस्थाएं भी हैं जो ग्रामीण एवं उपेक्षित क्षेत्रों की उन्नती के लिए प्रयत्नशील रहती हैं।

अन्नदान योजना भी प्रारंभ की गई है जो तीर्थस्थान में आए हुए लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था करती है। ‘एक मुद्दी भर चावल’ योजना भी कई स्थानों पर सफलता पूर्वक चल रही है। इसे योजना के अन्तर्गत प्रत्येक घर में प्रति दिन एक मुद्दी अनाज निकाल कर अलग रख दिया जाता है और केन्द्रीय एजेन्सियों की सहायता से सप्ताह में एक बार इस इकट्ठा कर लिया जाता है। और उसे पका कर समाज के निर्धन लोगों को मुफ्त खिलाया जाता है। सिकन्द्राबाद रेलवे स्टेशन के समीप गणेश मन्दिर में यह योजना पिछलें तीस वर्षों से बड़ी सफलता पूर्वक चल रही है। इन महान आचार्यों के आशीर्वाद से जेलों और अस्पतालों में प्रसाद बाटा जाता है त्योहारों के अवसर पर फल और नए कपड़े भी बाँटे जाते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में, वेद पाठशालाओं के अतिरिक्त १७ ओरियन्टल स्कूल, ३८ शंकर विद्यालय, भारत के विभिन्न भागों में (भिलाई, शाहजहाँपुर और जोशीमठ को मिलाकर) चलाए जाते हैं। एनाथुर में श्री शंकर आर्ट्स और

साइंस कालेज भी चलाया जा रहा है। श्री चन्द्रशेखरेन्द्र विश्व महा विद्यालय को सरकार ने विश्व विद्यालय की मान्यता प्रदान करने का निर्णय किया है ये विश्व विद्यालय १९९३ से कार्यरत है। स्नातक कौसो में संस्कृत और कम्यूटर साइंस की डिग्री की पढ़ाई है जिसमें संस्कृत शिक्षण को आधुनिक विज्ञान से जोड़ने का प्रायस किया जा रहा है।

चेन्नै महानगर के पास नाजरेतपेट में एक आयुर्वेदिक कालेज भी चलाया जा रहा है जो विश्व विद्यालय से संबंध है। एनाथुर में श्री बालाजी इंजीनियरिंग कालेज में तकनीकी शिक्षा प्रदान की जा रही है। पीठम के अन्तर्गत चलाए जा रहे कालेजों में कई कम्यूटर कोर्स भी जोड़े गए हैं।

विश्व विद्यालय ने एक अत्यन्त प्रभावशाली शोध परियोजना (रिसर्च प्रोजेक्ट) चलाने की भी योजना बनाई गई है। जिसका शीर्षक है एक सैद्धान्तिक परीक्षण वैदिक मंत्रों के ध्वनि शास्त्र का मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रभाव।

भारतीय संस्कृति और साहित्य की महानता को पुनर्जीवित करने के लिए एनाथुर श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तकालय और शोध संस्थान प्रारंभ किए गए हैं। एनाथुर, काँचीपुरम से चार किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। प्रमुख सन्तों की दार्शनिक श्रंखला में सरस्वती स्वामी जी ६८ वें और महामहिम श्री शंकर विजयेन्द्र सरस्वती स्वामी जी ७० वें पीठाधिपति के रूप में इस पीठम् का कार्य संभाला।

सन् १९८३ से १९९८ के बीच पीठाधिपति स्वामियों की इस श्रंखला में एक अद्भुत एवं अद्वितीय मेल देखा गया है। ये तीनों ही शंकराचार्य जी अलग-अलग प्रान्त के हैं। श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती ने कर्नाटक के होयसाला परिवार के, श्री जयेन्द्र सरस्वती तमिल परिवार के और श्री विजयेन्द्र सरस्वती जी तेलुगु परिवार के हैं।

जिन महानुभूतियों ने इस पीठम् की शोभा बढ़ाई उनमें से दो काश्मीर के, छ: महाराष्ट्र के, सात आन्ध्र प्रदेश के कुछ कर्नाटक और केरल के कुछ और उत्तर भारत के भी आचार्य थे। तीसरें शंकराचार्य सर्वज्ञात्मन जी ने १९२ वर्ष तक और चौथे श्री सरस्वती ने १०८ वर्ष के दीर्घकाल तक इस पीठम् के कार्य भार को संभाला।

६७ वे पीठाधिपति श्री महादेवेन्द्र सरस्वती का कार्यकाल विदेह मुक्ति पाने के पूर्व केवल सात दिनों का था। आपने ही श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती जी वो ६८ वें पीठाधिपति के रूप में नामांकित किया।

श्री आदि शंकराचार्य

हमारे भारत देश में अनेक महान सन्तों ने जन्म लिया है किन्तु उनमें से जगदगुरु श्री आदिशंकराचार्य जी निःसन्देह एक महान दार्शनिक और विश्वविद्यात सन्त है। यद्यपि उनकी जीवन-लीला केवल ३२ वर्षों कीथी किन्तु इस अल्पकाल में उनकी उपलब्धियाँ अनेक एवं असीम थी। बुद्धि का संसार उनके चरणों तले बसता था। विभिन्न जाति और मतोंका प्रभाव जो उनके काल में था शंकराचार्य जी के सामने टिक न सका। उन्होंने अपने समय से पूर्व के सभी मतों के प्रभाव को क्षीण कर दिया। अन्य मतावलम्बियों एवं चिन्तकों ने स्वेच्छा से अपने मतभेदों को मिटाकर अद्वैत-तत्त्व को अपनाया।

आज यदि हम श्री रामनवमी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि या दुर्गापूजा जैसे पर्व मना रहे हैं तो इसका श्रेय श्री शंकराचार्य जी को ही है। यदि उनका आविभवि न हुआ होता तो अन्य मत जो ईश्वर की सत्ता पर विश्वास नहीं करते फैल गए होते और जिनसे सनातन धर्म को जो अकथित हानि पहुँचती, उसका हम हिसाब भी नहीं लगा सकते थे।

आज से २५०० वर्ष पूर्व केरल के कालडी गाँव में श्री शंकराचार्य जी का जन्म हुआ। वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की पाँचवी तिथि को उसने जन्म लिया। परम् सात्त्विक, अति धर्मिक शिव भक्त श्री शिवगुरु और उनकी पन्ती आर्याम्बा के पुत्र के रूप में श्री शंकराचार्य जी, मानव-रूप में इस धरती पर अवतरित हुए। ये दम्पति कई वर्ष तक निःसन्तान थे। एक दिन सपने में उन्हें ईश्वरन ने दर्शन दिए और उनसे पूछा कि क्या तुम्हें कई बच्चे चाहिए जो दीर्घजीवी और मूर्ख हों या केवल एक जो परम् विद्वान किन्तु अल्पजीवी हो। दम्पति ने इसका निर्णय ईश्वर पर ही छोड़ दिया।

जब बालक शंकर का जन्म हुआ, इनके भाग्य में केवल आठ वर्ष की आयु ही लिखी थी। इनके पिता का भी जल्दी ही देहांत हो गया था।

एक दिन ब्रह्मचारी अवस्था में बालक शंकर एक गरीब दम्पति के घर भिक्षा माँगने गए। उस समय घर में केवल गृहिणी थी उसने भिक्षा माँगता हुआ बालक का अति-मधुर आवाज सुनी। उस महिला को लगा कि इस बालक को कुछ देना चाहिए। उसने जैसे ही दरवाजा खोला तो बालक के मुखमंडल के दिव्य प्रकाश को देखकर वह चकित रह गई। उसने महसूस किया कि यह कोई साधारण बालक नहीं अपितु देव स्वरूप है।

महिला ने अपना सारा घर छान मारा कि इस बालक के योग्य उसे कुछ दिया जा सके किन्तु उसे संतोष होता । जो मिला वह भी था पुराना आवला । महिला, इस बालक को रवाली हाथ लौटाना भी नहीं चाहती थी । लज्जा से सकुचाते हुए उसने वह आँवला उस बालक को दे दिया । बालक शंकर ने जान लिया कि उस महिला के पास जो कुछ भी था उसने पूरा का पूरा दे दिया है । बालक ने माता लक्ष्मी से प्रार्थना की कि वे इस दम्पति पर अपनी कृपा बरसाएं । उसी समय बालक के मुंह से अतिसुन्दर कनक धाराख्रोत फूट पड़ा । आश्र्य की बात देखिए कि उसी समय उस निर्धन महिला के घर में सोने के आँवलों की वर्षा होने लगी । मान्यता ये है कि जो इस कनक धारा ख्रोत का नियमित रूप से पाठ करते हैं उन्हें सम्पन्नता और समृद्धि की प्राप्ति होती है ।

बालक शंकर जब आठ वर्ष के थे तो उन्होंने अपनी माँ से सन्यास ग्रहण करनेकी आज्ञा माँगी । अपने एकमात्र पुत्र को माँ साधु वेष में नहीं देखना चाहती थी अतः उन्होंने अस्वीकार कर दिया । बालक शंकर ने तब एक लीला रची । उनकी माँ को अब यह निश्चय करना था कि या तो उनके घर के सामने बहती हुई नदी का मगरमच्छ उनके बालक को निगल जाए या वे उसे सन्यासी बनने की अनुमति प्रदान करें । स्नेह से भरी माँ ने एक बार फिर यह निर्णय, ईश्वर पर ही छोड़ दिया ।

ऐसा कहा जाता है कि व्यक्ति को उसकी आयु के उतने ही वर्ष और मिल जाते हैं जिस आयु में वह सन्यास आश्रम में पदार्पण करता है । अतः बालक शंकर जब साधु बने, उन्हें जीवन के आठ वर्ष का समय और मिल गया ।

सन्यास-आश्रम में प्रवेश करने के बाद बालक शंकर गुरु की खोज में घर छोड़कर निकल पड़े । उन्हें नर्मदा नदीके तट पर ओंकरनाथ में श्री गोविन्द भागवतपद के रूप में गुरु मिल गए । श्री शंकर अपने गुरु के साथ दो वर्ष तक शिक्षा ग्रहण की और आचार्य बन गए और तत्पश्चात् वे धूमते फिरते, भिक्षुक के रूप में काशी जा पहुँचे ।

काशी में श्री शंकर ने ब्रह्मसूत्र के भाष्यों की क्रम से व्याख्या की । भारत वर्ष ५६ विभिन्न राज्यों से पण्डित काशी आए और उन्होंने इन भाष्यों की व्याख्या सुनी और अपनी राजधानी लौट कर उनका जनता में प्रचार भी किया । इस तरह से ब्रह्मसूत्र के ये भाष्य सारे भारत में फैल गए ।

श्री आदि शंकराचार्य जी का सन्देश बिल्कुल सीधा और सरल था ।

सर्वोच्च ब्रह्म ही अन्तिम सत्य है जो अनेक रूपों में इन सांसारिक पदार्थों के बीच एक शक्ति के रूप में विद्यमान रहता है ।

ये महान आचार्य, इस दुनिया में इसी महान सत्य की शिक्षा देने के लिए अवतंरित हुए और उन्होंने मानवता की बहुमूल्य सेवा की । श्री शंकराचार्य जी ने अपने दार्शनिक विचारों को पुनः उपनिषदों के पारम्परिक रूप में समझा और समझाया ।

तद्वपरान्त, आचार्य शंकर ने सभी ५६ राजधानियों की पद-यात्रा की और अद्वैत तत्व को अन्तिम सत्य के रूप में स्थापित किया ।

आचार्य शंकर से पूर्व ७२ विभिन्न विचार धाराएँ और उनकी शाखा प्रशाखाएं थीं जिनमें कई तत्वों को उपस्थित किया गया । प्रायः इन विचार धाराओं में मत भेद होता था । कुछ तत्व आत्मा के बहुत की वकालत करते थे और परमात्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करते थे । आचार्य शंकर ने अद्वैत-मन को सर्वोच्च धोषित कर उसकी स्थापना की और अन्य मतों को क्षीण कर दिया ।

श्री शंकराचार्य जी ने भक्ति के छः मार्ग निर्धारित किए जिन्हें 'षणमत स्थापनाचार्य' के नाम से जाना जाता है । अर्थात् धर्म के छः मार्गों की स्थापना करने वाला ये छः धार्मिक मार्ग हैं शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणापत्य और कौमार पहले पाँच मार्गों के अन्तर्गत् पंचायतन पूजा होती है अर्थात् शिव, विष्णु, अम्बिका, सूर्य और गणेश की पूजा जो हमारे देश के अनेक धार्मिक भक्त व्यक्ति करते हैं । ईश्वर के विभिन्न रूप और उनकी प्रशंसा में श्री शंकराचार्य की प्रार्थना और उनकी रचनाओं से मन्दिर के वातावरण को, विभिन्न तीज-त्यौहरों और पूजा-पाठ को नया जीवन मिला ।

सीधी-सरल भाषा में, उपनिषदों के सत्य को समझाते हुए आचार्य शंकर उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम् तक यात्रा करते रहे । नदी और पवित्र तीर्थ-स्थान, गाँव और शहर उनकी पद धूलि से पवित्र होते रहे । श्री शंकराचार्य के यंत्र मंत्र और उनकी प्रार्थनाओं से जन मानस की ईश्वरीय शक्ति की वृद्धि हुई ।

दर्शन की कर्म-मीमांसक शाखा बड़ी तेजी से बढ़ रही थी । कुमरिल भट्ट और मण्डन मिश्र इसके दो प्रमुख प्रवर्तक थे । श्री शंकराचार्य जी ने अपने तर्कों के द्वारा इसका युक्त रवण्डन किया । मण्डन मिश्र, आचार्य शंकर के मत से पूर्णतया सहमत हुए और सन्यास लेकर शंकराचार्य जी के पहले शिष्यों में से एक हुए ।

श्री मल्लिकार्जुन स्वामी के दर्शन हेतु श्री शंकराचार्य ने श्रीशैलम् की यात्रा की । वहाँ जब वे गहरी-साधना में लीन थे, एक कापालिक देवी काली माता को प्रसन्न करने के लिए इनका बलिदान करना चाहता था । लेकिन आचार्य के शिष्य श्री पद्मपादजी जिनकी प्रार्थना को सुनकर नरसिंह स्वामी आए और उन्होंने श्री शंकराचार्य की प्राण-रक्षा की ।

श्री शंकराचार्य जी बद्रीनाथ गए जहाँ परं अलकनन्दा नदी से भगवान बद्रीनारायण की मूर्ति निकालकर मन्दिर में उसको पुनः स्थापित किया । कैलाश जाने से पहले श्री शंकराचार्य जी केदारनाथ गए । कैलाश पर्वत में उन्हें भगवान शिव और माँ पार्वती के दर्शन हुए । भगवान शिव ने उन्हें पाँच स्फटिक के शिव लिंग दिए और सौन्दर्य लहरी (सौन्दर्य की लहरे) दी, जिसे भगवान शिव ने स्वयं, देवी पार्वती की प्रशंसा में गाया था ।

कैलाश पर्वत से लौटते समय श्री शंकराचार्य ने, नेपाल में भगवान पशुपतिनाथ के भी दर्शन किए ।

श्री शंकराचार्य ने जब काँचीपुरम में श्री काँची कामकोटि पीठम् की स्थापना की तो उन्होंने स्फटिक लिंग (योग-लिंग) की पूजा करना शुरू कर दिया, जिसे वे कैलाश पर्वत से लाए थे । इस योग लिंग (श्री चन्द्रमौलीश्वर स्वामी) की पीठम् में आज भी पूजा की जा रही है । पिछले ढाई हजार वर्षों से प्रतिदिन इसकी त्रिकाल पूजा होती है ।

प्रातः कालीन सबसे पहली पूजा के पहले जब अभिषेक किया जा रहा हो, उस समय भक्त स्फटिक लिंग के दर्शन कर सकते हैं । शुक्रवार को पूर्णिमा और प्रदोष के दिन सायंकालीन पूजा के समय में भी श्री चन्द्रमौलीश्वर स्वामी के दर्शन कर पाना संभव है । अन्य समय में जब अर्चना की जाती है, सजा हुआ लिंग फूलों के नीचे छुप जाता है ।

पीठम् में श्री आदि शंकराचार्य के सभी उत्तराधिकारी आचार्य इन्द्र सरस्वती मूल के हैं । यह उनके नाम के साथ जुड़ जाता है जब वे श्री काँची कामकोटि पीठम् में दीक्षा प्राप्त कर सन्यासी बनते हैं ।

श्री आदि शंकराचार्य और उनके सभी उत्तराधिकारी आचार्यों ने बताया कि हिन्दू-धर्म सबसे प्राचीन धर्म है । इसकी आयु का कोई भी पता नहीं लगा सकता । यह धर्म उस समय से है जब ईश्वर ने इन दुनिया की सृष्टि की । इस महान हिन्दू-धर्म का कोई भी संस्थापक नहीं है क्योंकि यह स्वयं ईश्वर से प्रकट हुआ है ।

अन्य धर्मों के संस्थापकों का नाम देना आसान है। उदाहरणार्थ इसाई धर्म के संस्थापक थे ईसा-मसीह। किसी भी धर्म को नाम देकर उस समय के जो भी धर्म थे उनसे उनकी अलग पहचा बनाने का प्रयास किया जाता था।

सृष्टि के प्रारम्भ से यही एक धर्म था जो लोकप्रिय और प्रचलित था। इस सनातन वैदिक हिन्दू धर्म को कोई नाम नहीं दिया गया। इसके अतिरिक्त इसका कोई संस्थापक भी नहीं था फिर भी इस धर्म ने मनुष्य के जीने का ढंग निर्धारित किया।

श्री आदि शंकराचार्य ने केवल दार्शनिक थे अपितु कवि भी थे। वे विद्वान पुरुष और सन्त थे। वे दार्शनिक चिन्तक और सभाज सुधारक थे। एक निर्भीक तर्क वितर्क करने वाले थे और उन्होंने एकता की आवश्यकता पर जोर दिया। जिन्दगी की प्रतिकूलता को उन्होंने खोल कर सामने रखा। उनकी विचार शक्ति में गजब की तीक्षणता थी। वे दार्शनिक थे जिन्होंने घोषण की कि जितना हम स्वयं को जानते हैं उससे हम महान हैं।

वे पलायनवादी नहीं थे जो दुनिया से डर कर पर्वतों अथवा जंगलों में चले जाते हैं अथवा जो प्रकाश की खोज में अथवा स्वयं के लिए ईश-आशीर्वाद की खोज में निकल पड़ते हैं। उन्हें सदा दूसरों की चिन्ता रहती थी और वे सदा उनके उत्थान के लिए कार्यरत रहते थे।

उनके सभी कामों से उनकी सशंक्त, प्रवरव बुद्धि का परिचय मिलता है। कई पवित्र, धार्मिक तीर्थ स्थानों को देखकर ही पता चल जाता था कि श्री आदि शंकराचार्य जी वहाँ रह चुके हैं। कही भी उनके रहने का उद्देश्य होता था तो एक उपदेशक की हैसियत से अथवा वहाँ के मन्दिरों के पुनर्निर्माण के लिए। श्री शंकराचार्य जी ने भाव-संतति के लिए अद्वैत सिद्धांत की परम्परा छोड़ी जिसे प्राचीन वेदों और उपनिषदों से प्रेरणा प्राप्त हुई।

चलते फिरते भगवान

करोड़ों लोग प्रतिवर्ष जन्म लेते हैं। उनमें से अधिकांश साधारण जीवन व्यतीत करते हैं इसी सांसारिक-लोक में रहते और काम करते हुए वे अपने आपको तट पर बैंधी नौका के समान महसूस करते हैं और अपने से कुछ ही ऐसे होते हैं जों उच्च आध्यात्मिक धरातल पर पहुँच कर-दूसरों के उत्थान के लिए काम करते हैं।

श्री काँची कामकोटि पीठम्, जिसकी स्थापना श्री आदि शंकराचार्य ने की थी, यहाँ के आचार्यों ने अपने महान संस्थापक के उच्च आदर्शों का अपने जीवन में पालन किया और उदार वेदान्ती ब्रह्मवादी दर्शन को जो किसी सम्प्रदाय से बँधा नहीं था और आस्तिकता को विश्वस्तरीय धरातल पर प्रोत्साहित किया।

श्री काँची कामकोटि पीठम् के सिंहासन पर जो आचार्य आरुढ़ हुए उन्होंने हमारे धर्म-शास्त्रों में बताए हुए मूल्यों का न केवल प्रचार-प्रसार किया अपितु उन्हें सुरक्षित भी रखा।

श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी जी कि श्री आदि शंकराचार्य की उत्तराधिकार की पवित्र कड़ी में ६८ वें आचार्य थे वे १३ फरवरी सन् १९०७ को १३ वर्ष की अल्पायु में ही श्री काँची कामकोटि पीठम् के सिंहासन पर आरुढ़ हुए।

अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की उच्च परम्पराओं से श्री दृढ़ता चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती जी बड़ी ईमानदारी और हृदय से चिपके रहे। अपने सिद्धान्तों और सीधे सादे जीवन से वे सबके प्यारे बन गए और लोग श्रद्धापूर्वक उन्हें 'चलता-फिरता भगवान' मानने लगे। बीसवीं शताब्दी के दीर्घकाल तक, अपनी जीवन-यात्रा में आपने कई सामाजिक और राजनैतिक जाग्रति भी उत्पन्न की।

श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी की जीवन पद्धति में लोगों ने हजारों वर्ष पूर्व के हमारे ऋषि ने महार्षियों का जीवन देखा। बीसवीं शताब्दी के लोग परम भाग्यशाली हैं जिन्हें श्री स्वामीजी के जीवन काल में रहने का अवसर मिला। स्वामी जी ने लोगों के दिमाग में वैदिक सनातन हिन्दू धर्म के शाश्वत मूल्यों को पुनः डाला वास्तव में वे एक दिव्य अवतारी पुरुष थे जो श्री आदि शंकराचार्य की भाँतिएक मिशन पर निकल पड़े और मिशन था वैदिक धर्म की प्राचीन कीर्ति को फिर से बनाए रखने का।

भारत की आध्यात्मिक ज्ञानमय संस्कृति में जो सबसे भव्य और उत्कृष्ट था, स्वामीजी उसका मूर्त रूप थे। जब वे किसी की ओर देखते तो उनकी चमकदार आँखों में सज्जनता, भलाई साधुत्व और गुरु का विवेक होता था जो व्यक्ति के भीतर गहरे तक प्रविष्ट हो जाता था, साथ ही उन आँखों में दया और प्रेम से भरा मैत्री-भाव भी होता था। धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में वे एक नव-जागरण ले आए और उन्होने लोगों को यह भी सिखाया कि भाग्य को कैसे ऊँचा उठाया जा सकता है।

स्वामी जी के मुख-मण्डल की प्रमापूर्ण मुस्कान शायद ही लोगों ने कहीं और देखी हो। जब वें मुस्कुराते तो उनके चेहरे पर बाल सुलभ सरलता दिखाई देती थी। ये था उनका अद्वितीय आकर्षण और माधुर्य।

त्याग, तपस्या, पूजा और शिक्षा को अपने जीवन में उतारकर वे आजीवन मानवता के कल्याण में रत रहे। उनकी उपस्थिति में लोगों को लगता मानों वे भगवान के सामने हैं। स्वीमीजी से दूर रहते हुए भी लोग उपस्थिति और सामीप्य का अनुभव करते थे।

उनका हँसी मज़ाक भी अनुभव करने की चीज़ था जिसके द्वारा व्यक्ति उनके साथ अपनत्व का भाव महसूस करता था। वे बहुत अच्छे कहानी सुनाने वाले भी थे। अपने उपन्यासों में अर्थात् छोटी-छोटी कहानियों द्वारा वे अपने कथन को पुष्ट करते और लोगोंको सहमत करते थे। इन कहानियों की इनके विचारों से जो महानता होती उससे वे अपने बड़े से बड़े विचारों की ओर व्यक्ति का ध्यान आकर्षित कर लेते। उनके पास हर प्रश्न, हर आलोचना का उत्तर था। वे हर शंका का समाधान कर सकते थे।

उनकी अद्वितीय स्मरण शक्ति से लोग अश्वर्य चकित हो जाते थे। यदि किसी व्यक्ति से वर्षों बाद भी मिलते तो उस भेंट की छोटी से छोटी बात भई उन्हें याद रहती थी।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जब श्री आदि शंकराचार्य जी ने भारत के कोने कोने की पद-यात्रा की तो उन्होने देखा कि मूर्ति भंग करने वाले बढ़ते चले जा रहे हैं और आस्तिकता को उखाड़ फेंका जा रहा है। श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी को इन्हीं विरोधी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। यह निर्विवाद सत्य है कि काँची के इस सन्त ने इन सभी परिस्थितियों का बड़ी विनम्रता, आस्था और दृढ़ निश्चय के साथ सामना किया।

ईश्वरीय और नैतिक मूल्यों के भंग होने से स्वामी जी बड़े चिन्तित थे। वे प्रायः कहा करते थे कि विदेशी हमारे भारत में, हमारे ग्रथों और शास्त्रों की रवोज में आए और अपने देश वासियों की भलाई के लिए उन्होंने इन शास्त्रों का अपनी भाषाओं में अनुवाद भी किया।

विज्ञान और तकनीकी प्रगति ने उन्हें वह सुख सन्तोष नहीं दिया। उन्होंने इस बात की घोषण की कि उन्हें आत्मिक और नैतिक ज्ञान, (जिसमें वे बहुत पीछे हैं) की खोज के लिए भारत की ओर बढ़ना होगा।

स्वामीजी चाहते थे कि भारतवासी इस बात पर गर्व महसूस करें कि भारत देश ने ऐसे लोगों को जन्म दिया है जिनमें अद्भुत आन्तरिक शक्ति है, जो अन्य सारे देशों को मिलाकर भी उनके पास नहीं होगी। हमारे लिए ये लज्जाजनक बात है कि हम अपने ही शास्त्रों से परिचित नहीं जिन्होंने हमें आदर्शों की उँचाई तक पहुँचाया।

उन्होंने यह भी कहा कि हम उन चीजों से तो परिचित हैं जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं किन्तु सारा विश्व जिन विषयों से आश्र्य चकित था, हम उन्हीं से अनभिज्ञ थे। ये दुःख की बात है कि हम उन शास्त्रों से भी अपरिचित थे जो हमारे धर्म का मूल थे। यद्यपि हम उस सम्यता के उत्तराधिकरी हैं जिसे सारा विश्व आदर की दृष्टि से देखता है तथापि हम उसके मूल ऋतु से अपरिचित हैं। तब भी हम स्वयं उसके प्रति चिन्तित नहीं हैं।

स्वामीजी ने अनुभव किया कि इन सभी दुःखदायी स्थितियों का कारण हमारी आधारभूत, त्रुटिपूर्ण शिक्षा पद्धति है। वे चाहते थे कि बच्चों का लालन पालन उचित तरीके से हो और उनमें बचपन से ही धार्मिक शिक्षा के द्वारा ईश्वर पर विश्वास पैदा हो।

अन्य धर्मों में पैदा हुए लोग अपने बच्चों को बचपन से ही पाठशालाओं में पवित्र धार्मिक ग्रंथों की शिक्षा देते हैं। जिस धर्म में वे जन्म लेते हैं उस धर्म के बारे में, घर में भी कुछ वर्षों तक उन्हें शिक्षा दी जाती है। युवावस्था तक वे अपने धर्म के बारे में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। हिन्दुओं को बचपन में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती है। यही कारण है कि वे दूसरे धार्मिक विश्वासों के आसानी से शिकार होकर धर्म परिवर्तन कर लेते हैं। दूसरे धर्म के लोग इस तरह किसी अन्य धर्म को गले नहीं लगाते।

कारण ये है कि दूसरे धर्मावलम्बी अपने धर्म के मूल भूत तथ्यों को

बचपन से ही सीखते हैं अतः ये सिद्धान्त उनके साथ मज़बूती से जुड़ जाते हैं। इसके विपरीत हम हिन्दू धर्मावलम्बी अपने बच्चों को बचपन से ही इस प्रकार की कोई धार्मिक शिक्षा नहीं देते और दुःख तो इस बात का है कि हम अपने ही धर्म ग्रंथों की आलोचना करते हैं और उन्हें नष्ट करने से भी नहीं हिचकते। हमारे बच्चों को अपने धर्म व शास्त्रों में रुचि तब पैदा होगी जब हम उन्हें बचपन से ही इन ग्रंथों की शिक्षा देंगे।

श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती जी का जन्म २० मई सन् १८९४ में जय वर्ष में तमिलनाडु के विलुपुरम् नामक गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम श्री सुब्रमन्य शास्त्री और माता का श्रीमती महालक्ष्मी था। स्वामीजी इनकी दूसरी सन्तान थे। अनुराधा नक्षत्र में इनका जन्म हुआ और इनका नाम स्वामीनाथन् रखा गया। इनके पिता जो होयसाला कर्नाटक के स्मार्त ब्राह्मण परिवार से सम्बन्ध रखते थे, वहाँ से तमिलनाडु चले गए। वे शिक्षा विभाग में कार्यरत थे।

बालक स्वामीनाथन की शिक्षा दीक्षा दिण्डीवनम् के आरकाट अमेरिकन मिशन स्कूल में हुई। जब वे पहली कक्षा में थे तो उनकी तीक्षण-बुद्धि और प्रतिभा को देखकर इंस्पेक्टर ऑफ स्कूलस् ने उन्हें तीसरी कक्षा में चढ़ा दिया।

जब बालक स्वामीनाथन पाँचवीं कक्षा में थे उन्होंने शेक्सपियर के नाटक में राजकुमार ऑर्थर और किंग जॉन का अभिनय किया। उन्होंने अपने शिक्षकों को निराश नहीं किया अपितु उनके सम्बाद बोलने का ढंग इतना बढ़िया था कि शिक्षकों ने यह अनुभव किया कि इतना बढ़िया रोल कोई और अदा ही नहीं कर सकता है।

सन् १९०५ में स्वामीनाथन का उपनयन संस्कार हुआ। सन् १९०७ में जब वे केवल तेरह वर्ष के थे तो उनके मौसेरे भाई श्री काँची कामकोटि पीठम् के ६७ वें पीठाधिपति नियुक्त हुए। ये उनकी विधवा मौसी की एकमात्र सन्तान थे। स्वामीनाथन् अपनी माँ के साथ कलवै गए। वे मौसी को उनकी एकमात्र सन्तान के सन्यास लेने पर सात्वना देने गए थे किन्तु भाग्य में कुछ और ही लिखा था। ६७ वें आचार्य ने कुछ ही दिनों में सिद्धि प्राप्तकी और १३ फरवरी सन् १९०७ को श्री स्वामीनाथन को पीठम् का ६८ वाँ अधिपति नियुक्त किया गया। इनकी माँ जो अपनी बहन को सात्वना देने गई थी स्वयं उन्हीं को धीरज बँधाना पड़ा।

युवा आचार्य ने फरवरी सन् १९०८ में देवी अकीलाण्डेश्वरी के मन्दिर में जो कि जम्बुकेश्वरम् में है, कुम्भाभिषेक किया। उनके दीर्घ कार्यकाल की यह

पहली और प्रमुख घटना थी। देवी की मूर्ति को कर्ण फलों से सजाया भी गया।

इस बात का उल्लेख भी होना चाहिए कि श्री आदि शंकराचार्य ने देवी जी के कान के आभूषण की पूजा करके अलग रखा और देवी जी की मूर्ति के सामने गणेश जी की मूर्ति की स्थापना की ताकि देवीजी की उग्रकला (भयंकर रूप) कुछ न्यून हो सके और देवी जी के कान के आभूषणों की मरम्मत करने और पूजा का अधिकार भी पीठम् के उत्तराधिकारी आचार्यों को ही सौंपा गया।

आचार्य ने कुछ वर्षों तक बड़े-बड़े पण्डितों से उचित प्रशिक्षण एवं शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की। उन्होंने कई शास्त्रों, विभिन्न भाषाओं, कला, विज्ञान और संगीत की भी शिक्षा प्राप्त की। साथ ही फोटोग्राफी और अन्य कई विषयों में भी निपुणता प्राप्त की।

स्वामीजी ने जगह-जगह की यात्रा करके लोंगों को त्रिकाल-पूजा के महत्व को बताया। श्री कांची काम कोटि पीठम् में श्री चन्द्र मौलीश्वर और महात्रिपुरा सुन्दरी जो वहाँ के प्रमुख ईष्टदेव हैं उनकी त्रिकाल-पूजा की जाती है।

स्वामीजी ने न केवल आत्मिक या आध्यात्मिक उत्थान किया अपितु समाज एवं जन कल्याण की भी बात की। वे निर्धनों और पतितों के प्रति भी चिन्तित रहते थे और उन्होंने धनिकों या उच्च वर्ग के लोगों को भी यह सलाह दी कि वे समाज के इस निर्धन वर्ग की सहायता करें।

स्वामीजी के प्रवचनों से हिन्दू विचारों को गहराई तक समझा जा सकता था। सौभाग्य से आपके कुछ प्रवचन, पुस्तक रूप में भी तैयार किए गए हैं। कठिन से कठिन प्रश्नों और उलझी हुई समस्याओं के भी उत्तर, स्वामीजी के पास थे। उन्होंने हिन्दू सभ्यता के सांकेतिक चिह्न और कल्पित कथाओं के अर्थ और उनका महत्व, समझाया।

एक महान धार्मिक हिन्दू और आद्यात्मिक नेता श्री महास्वामी को अन्य धर्मों के विश्वासों के प्रति भी सम्मान था। यही कारण है कि अन्य धर्मावलम्बियों से उन्हें विशेष आदर सम्मान मिला। ८ जनवरी १९९४ को जब महास्वामी को सिद्धि प्राप्त हुई तो उन्हें श्रद्धांजली देने के लिए, हिन्दू भक्तों के साथ-साथ बड़ी संख्या में इसाई और मुसलमान भी आए।

फरवरी सन् १९३४ को श्री महास्वामी जी जब पहली बार हैदराबाद आए तो महामहिम निज़ाम सरकार के परिवार में शोंक मनाया जा रहा था।

प्रान्त में कही भी संगीत या वाद्य-यंत्रों के बजाने की मनाही थी तो भी श्री स्वामाजी के लिए निज़ाम सरकार ने एक खास फरमान ज़ारी किया जिस में श्री कांची कामकोटि पीठम् के अधिपति को इस आदेश से मुक्त कर दिया गया था । पूजा के समय नादस्वरम् और अन्य वाधों के बजाने की अनुमति दे दी गई ।

बड़े-बड़े पदाधिकारियों ने श्री महास्वामी के दर्शन किए । भारत के कई राष्ट्रपति और प्रधान-मंत्री और विदेशों के उच्च पदाधिकारी और जीवन के हर क्षेत्र के लोग, कभी न कभी इनके चरणों में नत् मस्तक थे ।

महात्मा गाँधी जब स्वामीजी से मिलने आए तो दोनों के बीच बहुत लम्बे समय तक चर्चा चलती रही । गाँधीजी को जब भोजन की याद दिलाई गई तो गाँधीजी ने कहा कि जो कुछ उन्होंने स्वामीजी से सुना वह उनके लिए भोजन के समान है ।

महामहिम श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी

महामहिम श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी जो श्री कांची कामकोटि पीठम् के ६९ वें पीठाधिपति हैं और जिन्होंने अपने भव्य आदर्शों और परम्पराओं की मशाल को ऊँचा उठाए रखा है।

इनके पिता श्री महादेव अय्यर दक्षिण भारतीय रेल्वे के लोको विभाग में कार्यकरते थे। वे प्रतिदिन शिव की पूजा किया करते थे।

श्री कांची कामकोटि पीठम् के अधिपति श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती के अय्यर महादेव अनन्य भक्त थे स्वामी जी के आशीर्वाद से उन्होंने अमर भारती परीक्षासमीति नामक संस्था के प्रकाशन का भार संभाला इस संस्था का उद्देश्य था संस्कृत का प्रचार प्रसार और उसे लोकप्रिय बनाना।

अय्यर जी के पूर्वज बहुत पढ़े लिखे वैदिक पंडित थे। श्री आत्मानाथ अय्यर की कन्या पार्वती से इनका विवाह हुआ किन्तु एक दुःखद घटना घटी जब पार्वती चल बसी। उन पर दुष्ख का पहाड़ टूट पड़ा। उनकी एक बेटी भी हुई जिसका नाम था लक्ष्मी। लक्ष्मी की देखरेख के लिए, बहुत समझा बुझाकर इनका दूसरा विवाह करवा दिया गया।

जुलाई सन् १९३३ को श्री रामामृत अय्यर की बेटी सरस्वती से इनका दूसरा विवाह हुआ। श्री रामामृत अय्यर जी इरुलनीकी गाँव के रहने वाले थे जो कि तंजाऊर जिले में है। जैसा कि कईभारतीय घरों में प्रथा है कि कन्या अपनी प्रथम सन्तान के जन्म के लिए माता-पिता के घर जाती है तो श्रीमती सरस्वती भी गर्भ-धारण के बाद अपने मायके गई।

१८ जुलाई सन् १९३५ को इरुलनीकी गाँव में श्रीमती सरस्वती ने एक पुत्र-रन्न को जन्म दिया। श्री महादेव अय्यर उस समय विल्लुपुरम् में डियूटी पर थे। बालक का जन्म-नक्षत्र श्राविष्ठ था। लोगों ने कभी सोचा भी नहीं था कि यह नन्हा बालक भविष्य में वही करेगा जो इसके गाँव के नाम का अभिप्राय है। तमिल भाषा में इरुलनीकी शब्द का अर्थ है अंधकार को दूर हटाना। इस बालक का जन्म ही देश के लोगों के जीवन से अंधकार को हटाने के लिए हुआ था।

श्री महादेव अय्यर जी के बेटे का नाम रखा गया सुब्रमण्यम्। यह नाम भी बड़ा उचित एवं सार्थक था। भगवान शिव के दो बेटों में से एक का नाम

सुब्रह्मण्यम् (कर्तिकेय) है और - दूसरे है भगवान गणेश । श्री महादेव अथर के और दो बेटे हुए जिनके नाम हैं विश्वनाथन और रामकृष्णन् ।

श्री महादेव अथर की इच्छा थी कि उनका बेटा, सुब्रह्मण्यम् वेदों का अध्ययन करें । वे महामहिम श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी के पास पहुँचे और उनकी आज्ञा माँगी कि क्या वे बालक को तिरुविडैमरुदुर की वेद - पाठशाला भेज सकते हैं ? किन्तु आचार्य की इच्छा थी कि वे काँची में ही वेदों का अध्ययन करें । वेदों से इनका परिचय, वेदों का अध्ययन, श्री आदि शंकराचार्य के सान्निध्य में ही शुरू हो गया था । पुनः यह एक संयोग ही था कि नह्ने बालक ने, अद्वैत मार्ग के महान गुरु के आगे पूर्णतया, आत्म-समर्पण कर दिया । आठ वर्ष की आयु में सन् १९४४ को शंकर जयन्ती के दिन बालक सुब्रह्मण्यम् का उपनयन संस्कार हुआ ।

४ फरवरी सन् १९४४ को श्री कामाक्षी मन्दिर के कुम्भाभिषेकम् के अवसर पर, बालक सुब्रह्मण्यम् ने काँची में वेदों का अध्ययन प्रारम्भ किया और बाद में तिरुविडैमरुदुर जाकर अध्ययन जारी रखा ।

ब्रह्मश्री कृष्णमूर्ति शास्त्री ने अन्य धर्म शास्त्रों के अतिरिक्त इन्हें छः वर्षों तक ऋग्वेद की शिक्षा दी । सभी परीक्षाओं में ये प्रथम रहे ।

सन् १९४८ में जगदगुरु श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी ने निश्चय किया कि उनके उत्तराधिकारी के रूप में बालक सुब्रह्मण्यम् को नियुक्त किया जाय । उन्होने उनके पिता को बुला भेजा और उनकी अनुमति माँगी ।

सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता का अध्ययन कर चुकने के बाद इस युवक ने उपनिषदों और वेदों की शाखाओं के पद क्रम और घनम् सीखना प्रारंभ किया । उन्होनें काव्या तैत्रीयो उपनिषद् (ऋग्वेद) तैत्रीय उपनिषद् (यजुर्वेद) वृहदारण्य और ईश्वावास्योपनिषद् (शुक्लयजुर्वेद) छान्दग्य उपनिषद् (सामवेद) आदि का भी ज्ञान प्राप्त किया ।

२२ मार्च सन् १९५४ को, बड़े स्वामीजी के आदेशानुसार इस बालक को सन्यास की दीक्षा दी गई । ये जय वर्ष था । इसी वर्ष स्वामी का जन्म हुआ था । सन्यास स्वीकार करने के पहले पिता ने इन्हें कन्याकुमारी से हरिद्वार तक सभी पवित्र नदियों में स्नान भी करवाया ।

पूर्व-नियुक्त दिन, कमर तक गहरे पानी में खड़े होकर बालक सुब्रह्मण्यम् ने सांसारिक बंधनों का त्याग कर दिया । परम् पावन आचार्य ने इन्हें काषाय

और गेरुए वस्त्र दिए जो एक सन्यासी का वेष है और उन्हें अपना उत्तराधिकारी नामांकित किया और दीक्षा का नाम दिया श्री जयेन्द्र सरस्वती । दीक्षा के समय वे १९ वर्ष के थे । उन्हें महामहिम जगदगुरु श्री परम हंस परिद्विजकाचार्यवर्य श्री जयेन्द्र सरस्वती श्रीपाद् के नाम से घोषित किया गया और वे श्री काँची कामकोटि पीठम् के ६९ वें पीठाधपति हुए ।

तत्पाश्चात् पन्द्रह वर्षों तक वे वेदान्त, व्याकरण, मीमांसा, व्याकरण, मीमांसा, न्याय और अन्य शास्त्रों में निपुणता प्राप्त करते रहे । फिर वे उत्तर भारत की ओर जाने से पहले अपने गुरु के साथ रामेश्वरम् गए । सन् १९६८ में हैदराबाद की यात्रा के बाद वे काँची लौटे ।

बड़े स्वामीजी को अब ये विश्वास हो गया कि उनका उत्तराधिकारी सुयोग्य और सुपात्र है और वह भगवान चन्द्रमौलीश्वर, और देवी त्रिपुरासुन्दरी की विधिवत् पूजा कर सकता है और मठ की जिम्मेदारियों को भी संभाल सकता है और अब श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती जी एकान्त का जीवन व्यतीत करते हुए कठिन साधना और तपस्या करने लगे ।

अपने गुरु के आशीर्वाद से उन्होंने सन् १९७० में विजय यात्रा का श्री गणेश किया । परिद्वाजक होने के नाते वे अधिकतर धूमते ही रहते थे । बद्रीनाथ जैसे दूरस्थित तीर्थस्थान की भी उन्होंने यात्रा की और नेपाल में भगवान पशुपति नाथ के दर्शन किए । श्री स्वामी जी ने काँची से नेपाल तक पद-यात्रा की । वे श्री आदि शंकराचार्य भागवतपद् और स्वयं उनके महान गुरु की पवित्र परम्परा के अनुरूप ही ये सभी कार्य कर रहे थे । अपनी इन यात्राओं के द्वारा उन्होंने सनातन धर्म के प्राचीन गौरव का प्रचार प्रसार किया ।

दिल्ली में स्वामी जी ने उत्तर स्वामीमलै मन्दिर में कुम्भाभिषेक किया । ७ जून सन् १९७३ को तकालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी आपका आशीर्वाद लेने आई ।

श्री महास्वामी की जयन्ती के अवसर पर श्री आर. वेंकटरमन् एवं श्री गुलजारीलाल नन्दा ने एक जुलूस का आयोजन किया । एक मील लम्बे इस जुलूस में ७९ साधु सन्तों के छायाचित्र ले जाए गए ।

श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी जी ने जबसे सन्यास में पदार्पण किया अपने गुरु के साथ प्रतिवर्ष चतुर्मास ग्रन्त का पालन करते थे । जुलाई सन् १९७३ में जब वे ऋषिकेष में थे तो प्रहली बार उन्होंने व्यास-पूजा की और

अकेले चतुर्मास व्रत किया । ऋषिकेष में अखिल भारतीय विद्वानों एवं विद्यार्थियों का अधिवेशन हुआ था । २९ मई सन् १९८३ को श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी ने १३ वर्ष के शंकरन् को श्री काँची कामकोटि पीठम् का ७० वाँ अधिपति घोषित किया और उन्हें श्री शंकर विजयेन्द्र सरस्वती स्वामी नाम दिया ।

अक्टूबर सन् १९८६ में जब स्वामी जी दिल्ली में थे तो तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी अपनी पत्नी और दोनों बच्चों के साथ स्वामीजी की दर्शन के लिए आए ।

फरवरी सन् १९८७ को परम् पूज्य स्वामीजी आसाम की राजधानी गौहाटी गए और वहाँ श्री गणेश मन्दिर को पूजा अर्चना द्वारा पवित्र किया ।

तिरुमला में भगवान वेंकटेश्वर के सामने तपस्या करने के उपरान्त उसी वर्ष अक्टूबर में, स्वामी जी ने जन-कल्याण और जन जागरण का कार्यक्रम प्रारंभ किया ।

स्वामीजी का उद्देश्य था देश को समाज कल्याण के माध्यम से एकता के सूत्र में बोँधकर एक मज़बूत राष्ट्र बनाना । वे चाहते थे कि लोग प्रगाढ़ निद्रा से जागें ।

सन् १९९८ में श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी एक नई उँचाई तक पहुँचे । जहाँ तक सृति जाती है श्री आदि शंकराचार्य स्वामी जी के बाद ये पहले शंकराचार्य हैं जिन्होंने मानसरोवर की यात्रा की ।

चीन की सरकार ने इन्हें अति विशिष्ट व्यक्ति का सम्मान प्रदान किया और स्वामीजी को सभी सुविधाएँ और सुरक्षा प्रदान की । पहली बार कम्यूनिस्ट चीन के इतिहास में किसी धार्मिक नेता की यात्रा को दूर दर्शन नेटवर्क पर दिखाया गया । इस पवित्र मानसरोवर के किनारे पूज्य श्री स्वामीजी ने व्यास-पूजा की और श्री आदि शंकराचार्य जी की मूर्तियों की स्थापना की ।

कैलाश पर्वत की परिक्रमा के प्रारम्भ स्थान में और जहाँ परिक्रमा पूर्ण होती है वहाँ इनकी दो भव्य मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं । इससे पूर्व स्वामीजी ने उत्तर-पूर्व भारत में आसाम, त्रिपुरा, मेघालय और मिजोरम की यात्रा की त्रिपुरा प्रान्त के उदयपुर नामक स्थान में स्वामी जी ने देवी त्रिपुरा सुन्दरी की पूजा की । वे शिवसागर भी गए जहाँ उन्होंने भगवान शिव की पूजा की ।

४ जून सन् १९९८ को अपने भावो उत्तराधिकारी के साथ, गोंहाटी के श्री पूर्व तिरुपति बालाजी मन्दिर में स्वामीजी ने प्राण प्रतिष्ठा और कुम्भाभिषेकम्

किया । इस मन्दिर में श्री गणेश भगवान वैकटेश्वर, देवी पद्मावती और देवी विजय-दुर्गा की मूर्तियाँ हैं । उन भक्तों के लिए यह मन्दिर वरदान सिद्ध हुआ जो कई कारणों से बहुत दूर में आन्ध्र - प्रदेश स्थित तिरुपति के मन्दिर नहीं जा सकते थे ।

अपनी इससे पहली यात्रा में श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी जी ने आँखों की देखभाल के लिए एक अच्छे अस्पताल की आवश्यकता को महसूस किया । आँखों के उपचार (इलाज) में लब्मा-चौड़ा खर्च, यात्रा का खर्च और ठहरने का स्थान और खाने-पीने के खर्च का भार उठा नहीं पाते थे । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने आँखों के इलाज के लिए दवाखाना खोलने का कार्य प्रारम्भ किया । स्वामीजी द्वारा संस्थापित शंकर देव नेत्रालय उत्तर-पूर्वी प्रान्तों में अपने ढंग का अनूठा और सबसे बढ़ियां अस्पताल है ।

५ मई और २६ मई १९९३ में श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी और श्री शंकर विजयेन्द्र सरस्वती स्वामी ने श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी का कनकाभिषेकम् किया ।

श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी, श्री काँची कामकोटि मठ में स्थित पुरातन रजत सिंहासन पर आरूढ़ हुए । श्री शंकर विजयेन्द्र सरस्वती स्वामी ने उनके सिर पर हीरा-जड़ित स्वर्ण-मुकुट रखा ।

सन् १९७४ में जब स्वामीजी नेपाल गए तो उन्होंने नेपाल-नरेश से एक वृत्तखण्ड रचना का निमणि करने को कहा जहाँ से लोग नेपाल में प्रवेश करते हैं और उस पर ये शब्द लिखने को कहा दुनिया का एकमात्र हिन्दू राज्य नेपाल आपका स्वागत करता है । स्वामीजी जब सन् १९८८ में दुबारा नेपाल गए तो उन्होंने के कर-कमलों से इस वृत्त-खण्ड का उद्घाटन करवाया गया ।

परम् पावन श्री शक्ति विजयेन्द्र सरस्वती रवामी

परम् पावन, महामहिम जगदुगुरु श्री.चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामीजी महाराष्ट्र के महागाँव में कई महीने तक शिविर रखने के बाद अप्रैल सन् १९८३ में जब वे आन्ध्र-प्रदेश पहुँचे तो तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री एन टी. रामाराव ने, महबूब नगर के कस्तूरी पल्ली गाँव में भव्य-स्वागत के साथ स्वामी जीकी अगवानी की। उस गाँव के लोगों ने कल्पना भी नहीं की होगी कि बहुत जल्दी ही उन्हें एक नए शंकराचार्यजी के दर्शन होंगे।

परम् पावन जगदुगुरु श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी ने ठीक एक माह बाद अपने उत्तराधिकारी का चयन किया। इस उत्तराधिकारी का जन्म, श्री कृष्णमूर्ति शास्त्री और श्रीमती अम्बालक्ष्मी के चौथे पुत्र के रूप में हुआ। ये परिवार पोत्रेरि के पास पेरिय पालयम् जिले के तंडलम गाँव में बस गया था। इस बालक का जन्म १३ मार्च सन् १९६९ को हुआ जन्म-नक्षत्र उत्तर आषाढ़ था और उसका नाम शंकरनारायणन् रखा गया। परिवार के सदस्य इस बालक को शंकरन् के नाम से पुकारते थे। यह भी एक दैवी संयोग था कि जो बालक भविष्य में शंकराचार्य बनने वाला था, श्री कँची कामकोटि पीठम् का अधिपति-उसका नाम बचपन से ही शंकरन् था।

नहे बालक के रूप में शंकरन् नियमित पाठशाला गए और छठी कक्षा तक की पढ़ाई की। श्री कृष्णमूर्ति शास्त्री जो वेदों के प्रख्यात ज्ञाता थे बालक शंकरन को तंडलम और तत्पश्चात् पोलूर शहर की वेद पाठशाला में ऋग्वेद की शिक्षा दी। पिता की पाठशाला में उनके परम् शिष्य होकर शिक्षा पाने के पूर्व, अपने पिता से वेदअध्ययन करने का नियम बनाया। वेदों में उन्होंने इतनी प्रवीणता प्राप्त कर ली कि उन्हें कई पुरस्कार भी मिले। अति मेधावी बालक शंकरन ने तीन वर्षों में ही ऋग्वेद में निपुणता प्राप्त करली जब कि अन्य लोगों को कम से कम आठ वर्ष लगते थे।

इसके उपरान्त वे तिरुचिरापल्ली की अल्लूर पाठशाला को भेजे गए जहाँ पर उन्होंने काव्य, लीलावती गणितम् और अन्य विषयों की शिक्षा प्राप्त की। यहाँ भी उन्होंने कई पारितोषिक जीतकर अपनी प्रवर्व-बुद्धि और प्रतिभाका परिचय दिया। महामहिम जगदुगुरु श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी ने उनकी तेजस्विता को पहचाना और इस निर्णय पर पहुँचे कि यह बालक शंकरन् ही उनका सुयोग्य उत्तराधिकारी हो सकता है। २९ मई सन् १९८३ को उन्हें इस पवित्र पथ या परम्परा में दीक्षा दी और नाम दिया श्री शंकर विजयेन्द्र सरस्वती

स्वामी। जुलाई मास की सन् १९८३ में जब तीनों शंकराचार्य ने चतुर्मास का व्रत किया तो आन्ध्र-प्रदेश के लोग और विशेष रूप से कर्नूल के लोगों को स्वामी-त्रय का आशिर्वाद प्राप्त हुआ।

युवा शंकराचार्य की तेजस्विता मेधा और मुखमडल की आभा को देखकर, रह किसी की मान्यता थी कि ये बिलकुल गुरु श्री आदि शंकराचार्य जैसे दिखाई देते थे। पहले भी कई बार महामहिम श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी जीसे मिल चुके थे, लेकिन इस पवित्र पथ में प्रवेश पाने के बाद अपने परम् गुरु से पहली बार मिलना बालक शंकराचार्य जी को एक अद्भुत अनुभव था।

बालक स्वामी जी केवल तेरह वर्ष के थे जब उन्होंने दीक्षा प्राप्त की। यद्यपि वे आयु में छोटे थे लेकिन और पांडित्य पूर्ण बड़े व्यक्ति शंकराचार्य थे तमिल मे पेरियवाल शब्द आदर सूचक है जिसका अर्थ है - बड़ा व्यक्ति। इसलिए उन्हें बाल-पेरियवाल कहा गया जिसका अर्थ है - बालक बड़ा व्यक्ति। तब से श्री शंकर विजयेन्द्र सरस्वती स्वामी ने अपने गुरु के साथ भारत के कोने की यात्रा की, वे नेपाल भी गए। सन् १९९८ में जब आपने विजय-यात्रा प्रारम्भ की तब आप आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, आसाम, मेघालय पहुँचे। आसाम की राजधानी गोहाटी में अपने पूज्य गुरु देव के साथ इन्होंने पूर्व तिरुपति बालाजी मन्दिर का कुम्भाभिषेकम् किया।

मेघालय में उनका भव्य-स्वागत् हुआ मेघालय के राज्यपाल श्री एम एम जेकव, मुख्यमंत्री श्री बी. वी. लिंगदेह गृहमंत्री श्री ए. एच. स्कॉट और मेंजर जनरल हरि उनियाल - ये सारे विशिष्ट पदाधिकारी इस युवा - स्वामीके स्वागत में उपस्थित थे।

महामहिम श्री शंकर विजयेन्द्र सरस्वती स्वामी धर्म और संस्कृति की सुरक्षा में विशेष रुचि रखते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्वामीजी ने कई रास्ते अपनाए। मन्दिर की शित्य - कला को सिखाने के लिए श्री स्वामीजी ने कई शित्य-केन्द्रों का भी आयोजन किया और बहुत संख्या में युवकों की इस कला में रुचि बढ़ाई। स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थीयों को भारतीय संस्कृति की बुनियादी शिक्षा देने के लिए कक्षाएँ चलाने का श्रेय भी स्वामीजी ही को है।

अपने गुरु के निर्देशन में श्री शंकर विजयेन्द्र सरस्वती स्वामी ने काँची पुरम् के समीप इनाथुर में श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती अन्तरराष्ट्रीय पुस्तकालय और शोध संस्थान की स्थापना की। इस पुस्तकालय में विभिन्न महान् सन्तों द्वारा प्रचिलित दार्शनिक विचारों पर विभिन्न भाषाओं की कई पुस्तकें हैं। इसमें कई प्राचीन भोजपत्रों पर लिखी पाण्डु लिपियाँ भी हैं।

जनता के लिए उपचार की सुविधाएँ

कुछ लोगों का विचार है कि सनातन-धर्म में जन-कल्याण भावना परोपकार की भावना बिलकुल नहीं है। यह बिलकुल गलत धारण है। हमारा धर्म कहता है परोपकारर्थम् इदम् शरीरम्। हमें दूसरों की सहायता करना चाहिए।

न केवल व्यक्ति के अपितु समस्त मानवता के शारीरिक और मानसिक कल्याण के प्रति चिन्ता, प्रेम और अपनत्व यह सनातन धर्म की विशेषता है। धर्म कहता है सर्वे जनोः सुखिनो भवंतु अर्थात् सभी लोग सुखी, सम्पन्न एवं प्रसन्न रहें।

परम्-पावन जगदगुरु श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी ने युनाटेड नेशन जनरल एसेम्बली पर सन् १९६० में जो अपना विशेष आशीर्वाद दिया, उससे सारे विश्व के प्रति उनकी दया और प्रेम का पता चलता है।

स्वामी जी ने लोगों से अनुरोध किया कि वे प्रेम के द्वारा सभी दिलों को जीतें, लोगों के दिलों में जगह बनाएं और युद्ध सदा के लिए समाप्त हो जाय। अपने सन्देश को इस प्रार्थना के द्वारा उन्होंने लोगों तक पहुँचाया - समस्त मानव - परिवार का कल्याण हो। यह सनातन धर्म का सार है जो सभी की भलाई की बात सोचता है।

जन कल्याण और मानव-सेवा में श्री काँची कामकोटि पीठम् का योगदान अद्वितीय है। कुछ विभिन्न सेवा-प्रेरित क्रिया कलाप जो लोगों की सहायता करते हैं इस पीठम् में पहले से ही निर्धारित किए जा चुके हैं।

श्री काँची कामकोटि पीठम् ने देश के विभिन्न भागों में कई अस्पतलों की स्थापना की है जिससे लोगों को उपचार की उचित सुविधाएँ मिल सकें।

१९७६ में कुम्भकोणम् में चलते-फिरते भगवान ने एक मुक्त आयुर्वेदिक अस्पताल शुरू किया। इसी गाँव में उन्होंने कुष्ठ रोग के उपचार-हेतु भी एक अस्पताल खोला। इस अस्पताल में सेवा भावना से भरे हुए और समर्पित डाक्टरों का एक दल न केवल इस लोग से पीड़ित रोगियों का इलाज करता है अपितु उनका पुनर्वास भी करता है। उसके बाद तांबरम् और अन्य स्थानों में हिन्दू मिशन हास्पीटल की स्थापना की गई। कलकत्ता के लेक-गाड़नंस में काँची शंकर मेडिकल सेन्टर गरीब और जरूरत मन्द लोगों के लिए आशा का प्रकाश-स्तम्भ है। सभी इन्द्रियों में दृष्टि सबसे महत्वपूर्ण है।

इस बात को समझते हुए - कोयम्बतूर में श्री काँची शंकर आई सोसाइटी की स्थापना की गई ।

विश्व स्वास्थ्य संस्था (डब्ल्यू एच. ओ) ने अनुमान लगाया कि विश्व के १/५ हिस्सा अन्धे लोग भारत में ही हैं । यह भी रिपोर्ट दी गई कि १२० लाख अन्धे और ४५० लाख किसी न किसी नेत्र-रोग से पीड़ित लोग भारत में हैं । अधिकांश निर्धन व्यक्ति हैं जो न तो दूर-दराज तक की यात्रा कर सकते हैं और सुविधा पूर्ण इलाज ही करवा सकते हैं ।

आसाम की राजधानी गोहाटी में श्री शंकर देव नेत्रालय खोला गया और श्री काँची शंकर हेत्य एण्ड एजुकेशनल फाउण्डेशन की स्थापना की गई ।

१९९४ अक्टूबर में नेत्र रोगियों का परीक्षण शुरू हो गया और उसी वर्ष दिसम्बर में शांत्य चिकित्सा भी की जाने लगी । नवम्बर १९९५ में तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री पी. वी. नरसिंहराव ने इस अस्पताल को देश के नाम समर्पित किया ।

इलाज की सुविधाएँ और-अति उच्च परीक्षण यंत्रों तथा समार्पित कर्मचारी तथा उनकी सेवा भावना द्वारा यह अस्पताल उत्तर पूर्वी प्रान्तों में विख्यात हो गया है ।

जून १९९८ में स्वामीजी की गोहाटी यात्रा के दौरान महा महिम स्वामी जी ने अस्पताल का जो विस्तार किया गया था, उस भाग का उद्घाटन किया । शंकर नेत्रालय जिस ढंग से काम कर रहा है, उससे प्रसन्न होकर आसाम सरकार ने अस्पताल के विस्तार के लिए जमीन दान में दी । वर्तमान अस्पताल से थोड़ी ही दूरी पर एक बहु-मंजिली इमारत बन रही है । एक दूरदर्शी योजना है जिसके अनुसार सामान्य जनता के लिए अस्पताल चलाया जाएगा और जनता को बढ़िया शिक्षा प्रदान करने के लिए स्कूल और कॉलेज खोलना भी है ।

उस प्रान्त के एक महान मानवतावादी समाज सेवी ने इस परियोजना की सहायता के लिए १.०५ करोड़ की आर्थिक सहायता प्रदान की । १.६० करोड़ का कर्ज बैंक द्वारा मिलने से नेत्रालय का काम छः माह के रिकॉर्ड-समय में शुरू हो गया । इस नेत्रालय को बढ़ाने के लिए उत्तर पूर्व कांउसिंल ने २ करोड़ का प्रतिदान दिया ।

आसाम असबस्टॉस लिमिटेड की सहायता से, गोहाटी के बाहरी हिस्सों बोंडा, नांरगी में एक मुफ्त सेटेलाइट सेंटर चलाया जा रहा है । द

शंकर हेत्थ एण्ड एजुकेशनल फांडेशन, एक नेत्रालय चलाने के लिए गोहाटी लायन्स क्लब को तकनीकी सहायता भी दे रहा है।

बिहार प्रान्त में

बिहार प्रान्त के मधुबनी जिले में भी एक इसी तरह का आँख का अस्पताल खोला गया है। भारत नेपाल सीमा पर यह एक दूर-स्थित और पिछड़ा हुआ क्षेत्र है जहाँ पर बहुत थोड़ी औद्योगिक गतिविधियाँ हैं। अतः यहाँ लोगों के पास कोई निश्चित काम धंधा भी नहीं है। कृषि ही उनका मुख्य धंधा है। जमीन उपजाऊ है और किसान इसमें से कई बार फसल काटते हैं। सिंचाई की सुविधाये बढ़ाने से वे अपने खाद्य उत्पादन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकते हैं। इसमें जरा सा भी सन्देह नहीं।

श्री काँची कामकोटि पीठम् ने एक सेवा-ट्रस्ट की स्थापना की है जिसके द्वारा यह काँची शंकर अस्पताल चलता है और यह इस प्रान्त के लोगों को उत्तम, नेत्र रोगों सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान का रहा है।

कोयम्बुत्तूर की शंकर आई सोसाईटी जो काँची शंकराचार्य की एक प्रमुख आँख की संस्था है उससे इस अस्पताल को तकनीकी सहायता मिलेगी।

महामहिम श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी ने यहाँ पर एक औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान की भी नींव रखी है।

उत्तर प्रदेश में

हिमालय के परम-पवित्र तीर्थ स्थान बद्रीनाथ में, भगवान बद्री नारायण के दर्शन के लिए, देश के प्रत्येक भाग से लाखों की संख्या में तीर्थयात्री यहाँ आते हैं। छः माह जन यह मन्दिर दर्शनार्थ खुला रहता है छः माह इस प्रदेश में बर्फ के गिरने से यह मन्दिर बन्द रहता है। भक्त-गण चीटी जैसी लाइन लगाए यहाँ खड़े रहते हैं। पर्वतीय-मार्ग की बाद्याओं और कष्टों का भी उन्हें ध्यान नहीं रहता।

श्री आदिशंकराचार्यजी ने, देवभूमि हिमालय में अपनी विजय-यात्रा के दौरान, भगवान बद्रीनारायण की इस मूर्ति की पुनर्स्थापना की। श्री शंकराचार्य जी ने अलकनन्दा नदी से यह मूर्ति निकाली। रटूरा में एक देवी मन्दिर भी बनवाया। बद्रीनाथ जाते समय, रुद्रप्रयाग के पास रटूरा एक गाँव है। रुद्रप्रयाग न केवल परम पवित्र स्थान है अपितु अलकनन्दा और मन्दाकिनी नदियों का

संगम भी है। सन् १९८६ में अपनी विजय यात्रा के दौरान परम् पावन श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी जी बद्रीनाथ जाते समय जब रटूरा में रहे, लोगों ने उनसे मन्दिर बनाने की प्रार्थना की।

स्वामीजी ने देखा कि यहाँ लोग कई सक्रामक रोगों से पीड़ित हैं और उनके लिए उपचार की सुविधाएँ अपर्याप्त हैं। तो महा महिम स्वामी जी ने एक सामान्य अस्पताल बनवाने का निश्चय किया। तभी से शंकर स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र खुला और वह पौरी, तेहरी और चामेली जिलों के लगभग ४० गाँवों के लोगों की स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाये दे रहा है।

शंकर चेरिटेबल ट्रस्ट जिसका मुख्य कार्यालय नई दिल्ली में है इस अस्पताल की गतिविधियों की देखरेख करता है। ये ट्रस्ट ४० बिस्तर के अस्पताल का भी निर्माण का रहा है।

स्वामी जी ने शंकर बाल मन्दिर के नाम से एक प्राथमिक पाठशाला खोली ताकि इस क्षेत्र के बच्चे शिक्षित हो सकें। एक विजय गणपति मन्दिर और यात्री-निवास भी बनवाया यहाँ पर तीर्थ-यात्रियों के लिए एक विश्राम गृह भी बना है।

श्री काँची कामकोटि आश्रम और शंकर प्राथमिक पाठशाला के बनने से लोग इस स्थान को उत्तर काँची कहते हैं। हजारों की संख्या में जो तीर्थयात्री बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री और यमनोत्री जाते हैं वे इस विश्राम गृह और इलाज की सुविधाओं का पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं।

काँची कामकोटि पीठम् और राष्ट्रीय एकता

भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से राष्ट्रीय एकता के बारे में बहुत बातें हो रही हैं। वास्तव में देखा जाय तो हमारी राजनीतिक पार्टियों के बहुत से काम, लोगों को जोड़ नहीं रहे वे तो उन्हें तोड़ रहे हैं। संकीर्ण और छोटे-छोटे लघु-सूत्री लाभ, सत्ता की कभी न बुझने वाली प्यास से प्रेरित ये पार्टियाँ ऐसे सिद्धान्तों की वकालत करती हैं जिनसे हम लाख चाहें, लोगों को जोड़ा नहीं जा सकता।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व श्री आदि शंकाराचार्य ने कई बाधाओं का सामना करते हुए देश के कठिन भू भागों की चैबीस वर्षों में तीन बार यात्रा की, जब से उन्होंने दुनिया का पिरत्याग कर, सन्यास धारण किया था। इन

यात्राओं के पीछे उद्देश्य था लोगों के दिल और दिमागों को मिलाना सबसे पहले इन्होंने लोगों की आत्माओं को जोड़ा । जब शंकाराचार्य जी ने अवतार लिया, भारत देश भ्रमित था । विभिन्न सम्प्रदायों के लोग जनता को पथ भ्रष्ट कर रहे थे । सम्पूर्ण भारत देश में कई तीज त्यौहार जैसे विनायक चतुर्थी, श्री रामनावमी, गोकुलअष्टमी दीपावली, शिवरात्रि, नवरात्रपूजा इत्यादि मनाए जाते हैं । यह संभव है कि किसी प्रान्त के रीति-रिवाजों और परम्पराओं के कारण, उस त्यौहार के मनाने का तरीका थोड़ा अलग है । किन्तु सारे देश में इन त्यौहारों का मनाया जाना इस बात का प्रतीक है कि देश के लोग एक हैं ।

इस तरह की एकता, लाने का श्रये श्री आदि शंकराचार्य जी को ही हैं । उन्होंने नास्तिकता के प्रसार को रोका, जनता को एक सूत्र में बाँधा और इस सत्य को समझाया कि परम्परा से हम जिन देवी-देवताओं की पूजा करते आए हैं वे सब एक ही परमोच्च सत्ता, परमात्मा के प्रतिबिम्ब हैं । श्री आदि शंकराचार्य जी की राष्ट्रीय एकता सबसे ऊँचे क्रम की थी ।

यद्यपि कई ऐतिहासिक और राजनैति घटनाओं के परिणाम स्वरूप परिस्थितियाँ अस्थिर नहीं किन्तु भारत देश के लोगों में हमेशा एक लचीलापन रहा और उसने विभिन्न मतों और उनकी अभिरुचियों को अपने में समेट लिया । अनेकता में एकता उसका सबसे विशिष्ट गुण रहा है ।

श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती स्वामी, श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामी और श्री शंकर विजयेन्द्र सरस्वती स्वामी ने, अपनी विजय यात्राओं के द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों के लोगों के दिल और दिमागों को जोड़ने का अथक प्रयास किया है ।

आचार्यों ने अनुभव किया कि उत्तर-पूर्वी भारत के लोग अपने आप को देश से अलग महसूस कर रहे हैं तो परम्-पावन आचार्यों ने आसाम में सांस्कृतिक-दल भेजे । वैदिक पण्डितों ने भी वहाँ जाकर हवन-पूजन किया । एक गाड़ी में भगवान श्री गणेश एवं भगवान वेंकटेश्वर (बालाजी) की मूर्तियाँ यहाँ भेजी गईं ।

और वहाँ से जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से लोग तमिलनाडु लाए गए ताकि वे कृषि, उधोग एवं विभिन्न फैक्टरियों को देख-समझ सकें । आसाम की एक भजन-मण्डली ने आकार, श्री काँची कामकोटि मठ में भजन का कार्यक्रम किया । इस तरह के आदान-प्रदान से उत्तर पूर्व प्रान्त के जन साधारण को अपनी आँखों से देश के सांस्कृतिक सूत्र को देखने का अवसर मिला ।

नेत्रालय पाठशालाएँ और औषधालय खोलकर विभिन्न प्रान्त के लोगों को एक दूसरे के समीप लाने में सहायता मिली ।

श्री परमाचार्य जी के दस दैवी आदेश

१. मनुष्य होने के नाते हमारा एक कर्तव्य यह भी है कि हम दूसरों की भलाई का कोई भी अवसर हाथ से न जाने दें। निर्धन व्यक्ति दूसरों की सेवा कर सकता है और अपनी ईमानदारी से भरी मेहनत से देश की भी। धनी व्यक्ति, अपनी धन-दौलत से निर्धानों की सहायता कर सकता है। जो समाज के प्रभावशाली व्यक्ति हैं वे अपने दबदबे या प्रभाव का उपयोग कर दूसरों की सहायता कर सकते हैं। इस तरह से हम अपने दिलों में समाज-सेवा की भावना को जीवित रख सकते हैं।
२. मनुष्य स्वयं तो घास का एक तिनका भी निर्मित नहीं कर सकता। हम जो कुछ भी खारहे हैं या पहन रहे हैं। यदि हम सबसे पहले ईश्वर को समर्पित नहीं करते तो हम कृतधनता के भार से दबे रहेंगे। केवल सर्वोत्तम और चुना हुआ ही हम ईश्वर के चरणों में चढ़ाएँ।
३. बिना प्रेम के जीवन व्यर्थ हैं। प्रत्येक व्यक्ति को न केवल मनुष्य, अपितु पशु-पक्षियों के प्रति भी प्रेम-भावना पैदा करनी चाहिए।
४. यदि व्यक्ति बहुत सा धन संचित करता है किन्तु वह दान करना नहीं जानता तो साधारणतया उसके धन का दुराचारी उत्तराधिकारियों द्वारा अपव्यय हो जाता है किन्तु वह परिवार जो उदार एवं मानवतावादी है, उस, पर ईश्वर प्रसन्नता बरसाता है।
५. यदि कोई व्यक्ति कोई प्रसंशनीय कार्य करता है और उसके बाद प्रशंसापूर्ण बातें सुनने का इच्छुक रहता है या अपने आप अपनी प्रशंसा करता है तो वह सारी प्रशंसा खो बैठता है।
६. जो हो गया है, उस पर रोने या दुःख मनाने से कोई लाभ नहीं। यदि हम अच्छे और बुरे के बीच विवेक कर सकें तो हम बुराई के मार्ग में पुनः गिरने से बच सकते हैं।
७. अपने जीवन का समय अच्छे में लगाए। कल्याण के कामों में अपने को लगाए रखकर अपना भी उत्थान करें।
८. अपने दैनिक-जीवन में हर कर्तव्य को पूरा करें और अपने जीवन को प्रभु भक्ति से परिपूर्ण रखें।
९. अपने कर्तव्य का पालन करते हुए हम अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं।
१०. ज्ञान द्वारा अपने दुःख-दर्द और कष्टों से हमें मुक्ति प्राप्त हो सकती है।



H.H. Jagadguru Sri Shankara Vijayendra Saraswati Swami
placing a gold crown on the head of
H.H. Jagadguru Sri Jayendra Saraswati Swami